Volume XIII, ISSN: 2321-3914
April, 2018
Impact Factor 0.75 to 3.19

UGC Approval Number 63014

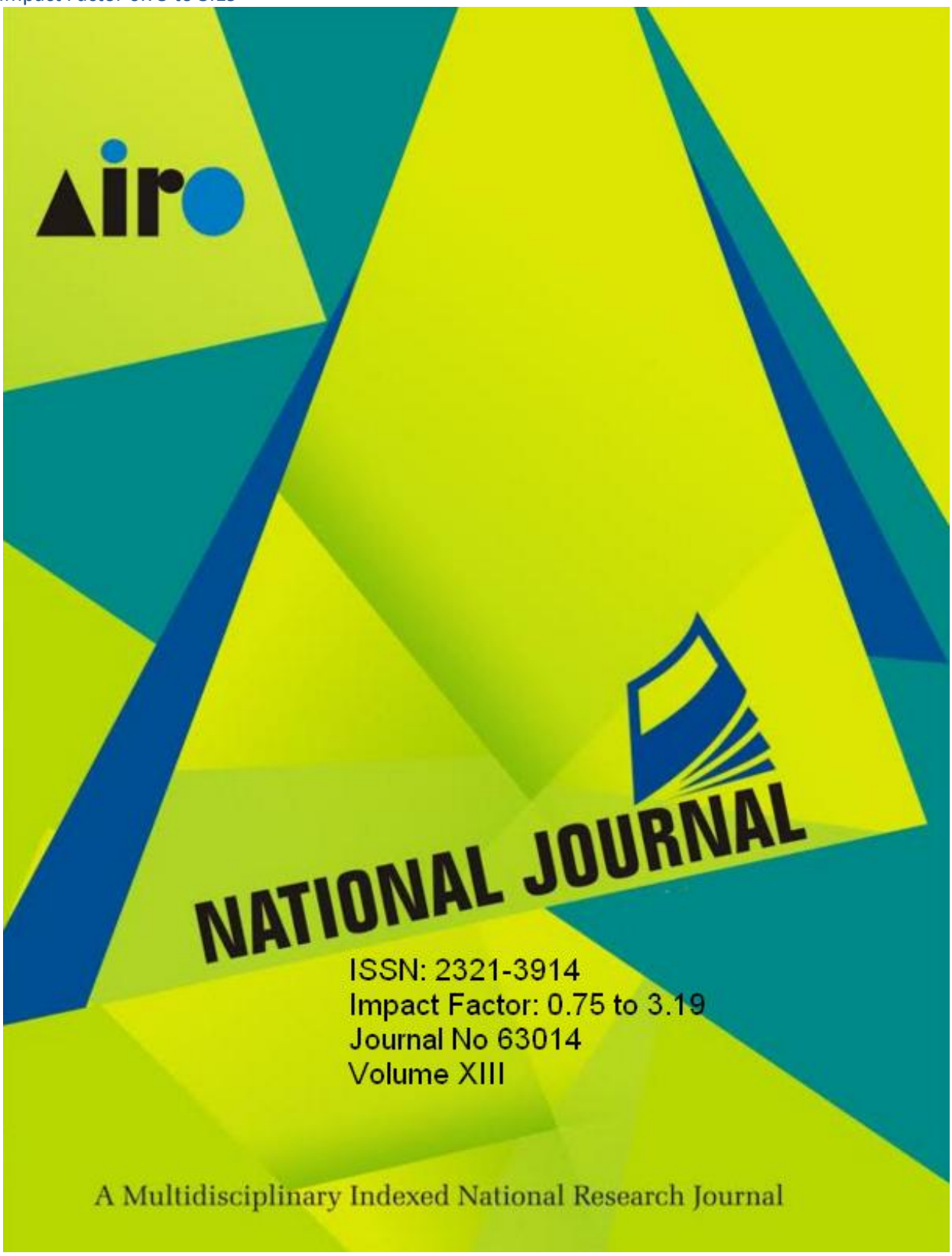

Airo National Research Journal

Volume XIII, ISSN: 2321-3914
April, 2018
Impact Factor 0.75 to 3.19

UGC Approval Number 63014

भारतेंदु की काव्य-भाषा और शिल्प
(खडी बोली के विकास के संदर्भ में)

राघवेन्द्र प्रताप सिंह

(शोधार्थी)

हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश (भारत)

Declaration of Author: I hereby declare that the content of this research paper has been truly made by me including the title of the research paper/research article, and no serial sequence of any sentence has been copied through internet or any other source except references or some unavoidable essential or technical terms. In case of finding any patent or copy right content of any source or other author in my paper/article, I shall always be responsible for further clarification or any legal issues. For sole right content of different author or different source, which was unintentionally or intentionally used in this research paper shall immediately be removed from this journal and I shall be accountable for any further legal issues, and there will be no responsibility of Journal in any matter. If anyone has some issue related to the content of this research paper's copied or plagiarism content he/she may contact on my above mentioned email ID.

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जब लिखना शुरू किया था उस समय कविता की भाषा ब्रज-भाषा ही थी, जिसकी तीन-चार सौ वर्षों की एक समृद्ध परंपरा उन्हें विरासत में प्राप्त हुई थी। सूरदास, घनानंद, बिहारी जैसे ब्रज-भाषा प्रवीण विशिष्ट कवि उनके सामने थे। हिंदी खड़ी बोली गद्य की एक क्षीण परंपरा भी मध्यकाल से ही चली आ रही थी। इसे ईसाई मिशनरियों, लेखक चतुष्ठय (लल्लूलाल, सदल मिश्र, इंशा अल्ला खाँ और सदासुख लाल) तथा राजाद्वय (राजा शिव प्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह) के माध्यम से एक नयी शक्ति मिली थी। आरंभ में उर्दू भाषा हिंदी खड़ी बोली की ही अरबी-फारसी मिश्रित एक शैली थी। 'रानी केतकी की कहानी' (1803) में इंशा अल्ला खाँ 'हिंदी छुट दूसरी भाषा पुट' न देने की नीति पर चले थे। हिंदी उर्दू का विवाद उठाने वाले रजा शिव प्रसाद सितारे हिंद और राजा लक्ष्मण सिंह थे, जिनमें एक ने अरबी-फारसी मिश्रित उर्दू का पक्ष लिया और दूसरे ने संस्कृत तत्सम मिश्रित हिंदी का। उस समय तक हिंदी और उर्दू-हिंदू-मुस्लिम दो भिन्न संप्रदायों से जुड़कर विकसित नहीं हो रही थीं। लेकिन हिंदी-उर्दू का विवाद खड़ा कर बाद में अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति के तहत इसे दो संप्रदायों के बीच खायी पैदा करने के लिए एक औजार के रूप में प्रयुक्त किया। इसके शिकार कट्टरपंथी हिंदू और मुसलमान दोनों बने। आज तक दोनों भाषाओं का एक सवाल संप्रदाय के सवालों से पूरी तरह मुक्त नहीं हा पाया है। अपने रचनाकाल में भारतेंदु ने राजा शिव प्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह के उर्दू-हिंदी भाषा-विवाद से अपने को बचाने का पूरा प्रयास किया। इन्होंने अरबी-फारसी और संस्कृत के चक्कर को छोड़कर बोल-चाल की 'आमफहमी' भाषा को अपना आदर्श बनाया। यद्यपि जरूरत पड़ने पर इन्होंने उर्दू का प्रयोग अपनी कविता में, विशेष रूप से अपनी गजलो में खुलकर किया है। इनकी रचना 'उर्दू बीबी का स्यापा' से यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि वे उर्दू

के विरुद्ध हिंदी के पक्षपाती थे। यह रचना एक विशेष संदर्भ में लिखी गयी है। वैसे भारतेंदु का अधिकांश काव्य ब्रज-भाषा में ही है, जिसमें इन्हें पूर्ण महारथ हासिल है।

बहरहाल भारतेंदु ने काव्य रचना की अपनी शुरूआत ब्रज-भाषा से ही की, जिसमें शीघ्र ही वे इस रूप में निपुण हो गये कि रीतिकालीन जड़ता में पली-बढ़ी ब्रज-भाषा की कमजोरियाँ उनके सामने तुरंत ऊजागर हो गई। इसमें उनहें साहित्य और जीवन में बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी होने का भी निश्चय ही लाभ मिला होगा। देश के विभिन्न भागों की यात्राएँ, वहां की भाषाओं, साहित्य में परिचय, नवजागरण आंदोलन का प्रभाव, साहित्य की तमाम नई विधाओं (नाटक, निबंध, लेख, पत्रकारिता, संवादन) में सक्रिय भागीदारी साहित्य संगठन की नयी क्रांतिकारी शुरूआत, लोक साहित्य, लोक संगीत, लोक छंद, लोक राग की पूर्ण जाकारियाँ, राष्ट्रीय जागरण के तमाम सवालों को अपने कर्म चिंतन का हिस्सा बनाना और जनता से सीधे सक्रिय रूप से जुड़ना आदि उनके जीवनमर्म के महत्वपूर्ण पहलू रहे हैं। इसलिए जिस प्रकार उन्होंने गद्य की प्रांसगिकता को समझ कर हिंदी गद्य को स्थापित करने में आंदोलनात्मक कार्यवाही की, उसी प्रकार हिंदी पद्य के क्षेत्र में उन्होंने ब्रज-भाषा का भी कायाकल्प करने की कोशिश की।

भारतेंदु की ब्रज-भाषागत विशेषता को रेखांकित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है : 'भारतेंदु ने जिस प्रकार हिंदी गद्य की भाषा का परिष्कृत किया, उसी प्रकार काव्य की ब्रज-भाषा को भी। उन्होंने देखा कि बहुत से शब्द जिन्हें बोलचाल से उठे कई सौह वर्ष हो गये थे, कवित्तों और सवैयों में बराबर लाए जाते हैं। इसके कारण कविता जनसाधारण की भाषा से दूर पड़ती जाती है। बहुत से शब्द तो प्राकृत और अपभ्रंश काल की परंपरा के स्मारक के रूप में ही बने हुए थे। चक्कव भुवाल, ठायो, दीह, ऊनो, लोय आदि के कारण बहुत से लोग ब्रज-भाषा की कविता से किनारा खींचने लगे थे। दूसरा दोष जो बढ़ते-बढ़ते बहुत बुरी हद तक पहुंच गया था, यह शब्दों के तोड़-मरोड़ और गढ़ंत के शब्दों का प्रयोग था। उन्होंने ऐसे शब्दों को भरसक कविता से दूर रखा और अपने रसीले सवैये में जहां तक हो सका, बोलचाल की भाषा का व्यवहार किया। इसी से उनके जीवनकाल में उनके सवैये चारों और सुनाई देने लगे। (हिंदी साहित्य का इतिहास) इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को ध्यान में रखकर सभी कवि-लेखकों से अपने निबंध 'जातीय संगीत' में ग्रामगीतों और लोकछंदों को अपनाने का आह्वान भी किया : 'यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उस का प्रचार सार्वदैशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना ग्रामगीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुन कर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता इस विषय में मैं, जिनको कुछ भी रचना शक्ति है, उनसे सहायता

चाहता हूँ कि वे लागे भी इस विषय पर गीत वह छंद बनाकर स्वतंत्र प्रकाशन करें या मेरे पास भेज दें, मैं उनको प्रकाशित करूँगा और सब लोग अपनी मंडली में गाने वालों को वह पुस्तक दें। ..... कजली, ठुमरी, खेमटा, कँहरव, श्रद्धा, चैती, होली, साँसी, लँबे, लावनी, जाँते के गीत, बिरहा, चनैनी, गजल इत्यादि ग्रामगीतों में इनका प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो, अर्थात् पंजाब में पंजाबी, बुंदेलखंड में बुंदेली, बिहार में बिहारी, ऐसे जिन देशों में जिस भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनें।'

काव्य विषयों के जीवन-संदर्भ चूंकि मध्यकालीन रीतिकालीन नहीं रहे थे, इसलिए जीवन की आम, व्यापक समस्याओं को समाज और राजनीति की समस्याओं को और सत्ता की चालबाजियों को जब भारतेंदु काव्य का विषय बनाते हैं तो समसामायिक जीवन की शब्दावली उनकी काव्य-भाषा में स्वभावतः प्रवेश करती है। इस प्रकार वह पारंपरिक काव्य-भाषा जो श्रृंगार, सौंदर्य और लक्षण गंथों के आधार पर अपना एक साँचा खड़ा किए हुए थी, जिस पर कोई किसी प्रकार का दबाव नहीं था, उसी काव्य-भाषा को अब प्राचीन, स्थिर विषयों के अलावा जीवन के नये संदर्भों, प्रसंगों, विचारों का बोझ उठाना पड़ा, जो उस काव्य-भाषा के लिए अपरिचित था, ऐसे में ब्रज की कोमल कांत पदावली बनी रहना संभव नहीं रहा। इसके साथ ही ब्रज-भाषा की असमर्थता भी उजागर हो गयी।

इस प्रकार ब्रज-भाषा को काव्य-भाषा के रूप में भारतेंदु ने नये-नये विषयों का, विचारों का, जन इच्छाओं का वाहक बनाते हुए उसमें से अप्रचलित, कठिन शब्दों को तिलांजलि दी और उसे सरल सुगम बनाने का प्रयास किया। किंतु भाषा की रागात्मक स्वच्छंदता, व्यावहारिकता मे उसकी प्रभाव क्षमता, मुहावरों और लोकोक्तियों की प्रासंगिकता को दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया।

हालांकि पद्य भाषा के रूप में ब्रज भारतेंदु को बहुत सहज, सरल एवं प्रिय लगती रही तथापि-ब्रज के अलावा उर्दू में भी उन्होंने अपनी लेखनी चलाई। 'फूलों का गुच्छा' कविता में से एक उदाहरण देखिएμ

नहीं का बाकी वक्त नहीं है जरा न जी में शरमाओ।

लब पर जों है, भला तो प्यारे मिलते जाओ।

कहाँ गई वह पिछली बातें कहाँ गया वह था जो प्यार।

किधर छिपाया चाँद-सा मुखड़ा दिखलाता जो यार।

बेहोशी में घबड़ा घबड़ा करके यही कहता हूँ पुकार।

मर्ज बढ़ गया बहुत इससे बचना अब है दुश्वार।

उर्दू में गजलें लिखने का भी भारतेंदु ने प्रयास किया μ

फिर आई फस्ले (ऋतु) गुल (फूल) फिर जख्म दह (घाव) रह रहके पकते हैं

मेरे दागे जिगर पर सूरते लाला (एक फूल) लहकते हैं।

नसीहत है अबस (व्यर्थ) नासेह (उपदेशक) बयाँ नाहक ही बकते हैं

जो बहकें दुख्तेरज (मदिरा) से हैं वह कब इन से बहकते हैं?

उर्दू एवं अन्य भाषाओं के प्रति ऐसे दृष्टिकोण का असर ब्रज–भाषा पर इस रूप में हुआ कि ब्रज के कवि अब अन्य प्रांतीय जनभाषओं से शब्द ग्रहण करने में भी उदार होते गये फलतः ब्रज–भाषा काव्य–भाषा के रूप में जनता के अधिक करीब होती गई। पद्य के लिए ब्रज–भाषा हो और गद्य के लिए खड़ी बोली होμयह समस्या धीरे–धीरे भारतेंदु के समय ही सिर उठाने लगी थी। खड़ी बोली में काव्य लिखने की एक क्षीण परम्परा होने का जिक्र हम पहले कर ही चुके हैं। भारतेंदु ने भी इस खड़ी बोली में काव्य लिखने का प्रयास किया, जिसमें शुरू में, उन्हे बड़ा अटपटापन महसूस हुआ, ब्रज की सी 'मिठास' उन्हें खड़ी बोली की दीर्घ क्रियाओं में फीकी जान पड़ी जिसका जिक्र 2 अक्टूबर, 1872 को 'कविवचन सुधा' में 'हिंदी भाषा' नामक निबंध में उन्होंने यूँ किया। 'जो हो मैने आप कई बेरे परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी इससे यह निश्चित होती है कि ब्रज–भाषा में ही कविता करना उत्तम होता है और कविता ब्रज–भाषा में ही उत्तम होती है।' इसके बाद नई भाषा की कविता की अपनी ये पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए लिखा μ

भजन करो श्री कृष्ण का, मिल करके सब लोग

सिद्ध होगा काम और छूटेगा सब सोग।

अब देखिए यह कैसी भौंडी कविता है मैंने इसका कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी नहीं बनती तो मुझको सबसे बड़ा कारण यह जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है इससे कविता अच्छी नहीं बनती।'

इस घटना के नौ वर्ष बाद भारतेंदु ने 1 सितंबर, 1881 को 'भारत मित्र' के संपादक को पत्र लिखा और अपनी खड़ी बोली में लिखी कुछ कविताएँ प्रकाशनार्थ भेजीं : 'प्रचलित साधुभाषा में कुछ कविता भेजी है। देखिएगा कि इस में क्या कसर है। और किस उपाय के अवलंम्बन करने से इस भाषा में काव्य सुंदर बन सकता है। इस विषय में सर्वसाधारण की अनुमति ज्ञात होने पर आगे से वैसा परिश्रम किया जाएगा। तीन भिन्न–भिन्न छंदों में यह अनुभव करने के लिए कि किस छंद में इस भाषा का काव्य अच्छा होगा, कविता लिखी है। मेरा चित्त इससे संतुष्ट न हुआ और न जाने क्यों ब्रज–भाषा से मुझे इसके लिखने में दूना परिश्रम हुआ। इस भाषा की क्रियाओं में दीर्घ भाग विशेष होने के कारण बहुत असुविधा होती है। मैंने कहीं–कहीं सौंदर्य के

हेतु दीर्घ मात्राओं को भी लघु करके पढ़ने की चाल रखी है। लोग विशेष इच्छा करेंगे और स्पष्ट अनुमति प्रकाश करेंगे तो मैं और भी लिखने का यत्न करूँगा।

निश्चय ही भारतेंदु ने खड़ी बोली में कविता लिखने के इस यत्न को और अगे बढ़ाया और अपने नाटकों में जहाँ-तहाँ कहीं ब्रज और खड़ी बोली दोनों को साथ मिलाकर, कहीं सिर्फ खड़ी बोली में, कहीं खड़ी बोली की उर्दू शैली में कविताएँ लिखी हैं। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैμ

यह है सुहाग का अचल हमारे बाना।

असुगन की मूरति खाक न कभी चढ़ना।।

सिर सेंदुर देकर चोटी गूँथ बनाना।

कर चूरी मुख में रंग तमोल जमाना।।

पीना प्याला भर रखना वही खुमारी।

साँची जोगिनी पिय बिना वियोगिनी नारी।।

है पंथ हमारा नैनों के मत जाना।

कुल लोक वेद सब औ परलोक मितना।।

शिवजी से जोगी को भी जोग सिखना।

हरिचंद एक प्यारे से नेह बढ़ाना।।

'अंधेर नगरी' नाटक में व्यंग्योक्ति के माध्यम सेचूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।। चूरन खावें एडिटर जात। जिनके पेट पचे नहीं बात।।

चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता।।

चूरन पूलिसवाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों को ध्यान से देखा जाए तो एक विशिष्ट वास्तविकता हमारे सामने उद्घटित होगी। पहले उदाहरण में अभिव्यक्ति पक्ष अत्यंत शिथिल है, लेकिन दूसरे उदहारण में गृहीत तथ्य अत्यंत सहजता और तीखेपन से उद्घटित हुआ है। इससे हमारे सामने कुछ विशेष निष्कर्ष आते हैं। भारतेंदु जब भक्ति या श्रृंखला जैसे परंपरागत विषयों पर खड़ी बोली हिंदी मे काव्य रचना करते हैं तो उनकी भाषा लड़खड़ा जाती है, लेकिन नये विषयों पर लिखते समय अभिव्यक्ति में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं दिखायी देती। यदि उन्होंने चिंतन से संबद्ध नये विचार प्रधान विषयों पर खड़ी बोली हिंदी में रचना की होती तो शायद उनके सामने विशेष दिक्कत नहीं आती। यह एक ऐसी वास्तविकता है, जिसे भारतेंदु संभवतः पहले समझ नहीं पाए थे।

भारतेंदु की खड़ी बोली की कविताएँ जितनी भी हैं वह ब्रज की केंचुल छोड़कर अपना नया रूप धारण करने का प्रयास करती दिखाई पड़ती है। विशेषकर उनके नाटकों में जहाँ कहीं खड़ी बोली की कविताएँ वे लिखते हैं वे सायास नहीं बल्कि जरूरत के अनुसार लिखी गई दिखाई पड़ती हैं। वैसे भी

गद्य की भाषा खड़ी बोली हो और पद्य की ब्रज-भाषाμ यह बात भारतेंद को भी निश्चय ही खलने लगी होगी। यह तो उन्हें पता था ही कि खड़ी बोली में कविता लिखने की वह ही शुरूआत नहीं कर रहे हैं बल्कि खड़ी बोली की उर्दू शैली और दखनी शैली में कविताएं उनसे पहले ही लिखी जाती रही हैं। खड़ी बोली में प्राचीन कीर्तनों के मिलने की बात स्वयं भारतेंदु ने 'हिंदी भाषा' शीर्षक निबंध में कही है। इस कीर्तन परंपरा में स्वयं उने पिता बाबू गिरधर दास की रचनाएँ भी मिलती है। भारतेंदु की खड़ी बोली की कविताओं का विस्तृत विश्लेषण विष्णुकांत शास्त्री ने 'भारतेंदु की खड़ी बोली की कविताएँ' निबंध में किया जाता है। जिससे यह बात तो सिद्ध हो ही जाती है कि भारतेंदु स्वयं इस बात को समझने लगे थे कि अब पद्य की भाषा ब्रज अधिक दिन तक बनी नहीं रह सकती। इसलिए 'साधुभाषा' (खड़ी बोली) में कविता रचने की जो शुरूआत उन्होंने 1872 ई. में की, उसे आगे बढ़ाने का प्रयास करते रहे। इसके बाद 1885 में उनकी असामयिक मृत्यु हो गई। लेकिन उनके समकालीन अन्य कविताओं ने खड़ी बोली में काव्य रचने के अपने प्रयास जारी रखे।

अभी तक प्रबंध काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक सरीखे काव्यरूप ही परंपरा से प्रचलित थे। जीवन की एक खास ढांचे में विशेष गति थी। सारा समाज ईश्वर केंद्रित विश्वासों, आस्थाओं, मूल्यों के इर्दगिर्द संचालित होता था। इसलिए इन मूल्यों के आधार पर जीवन का आरम्भ, मध्य, अंत निश्चित था। हर घटना, दुर्घटना के कार्य-कारण संबंध में कारण ईश्वर केंद्रित था लेकिन नवजागरण के आंदोलन ने मनुष्य के कर्म को भी महत्ता प्रदान की। आलस, नकारापन, अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढ़ियों पर कुठाराधात होने लगे। ऐसे में जीवन भी खण्डकाव्य महाकाव्य के रूपों को तोड़ कर बाहर आ गया। ऐसे लक्षण ग्रंथों का सहारा किसी ने नहीं खोजा जो काव्य रूप/काव्य-भाषा की कसौटी बनें बल्कि एक ही कसौटी भारतेंदु ने देखी उसी के आधार पर काव्य विषय भाषा रूप निर्धारित किया और वह कसौटी थी जनता और ठोस जनमानस। खण्डकाव्य पढ़ना, सुनना, सुनाना उस युग में संभव ही नहीं रहा। इसलिए समकालीन जीवन के दबावों ने नये काव्यरूपों को भी जन्म दिया। आचार्य शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में इसे यूं रेखांकित किया : 'विषयों की अनेकरुपता के साथ-साथ उनके विधान का ढंग भी बदल चला। प्राचीन धारा में 'मुक्तक' और 'प्रबंध' की जो प्रणाली चली आती थी, उससे कुछ भिन्न प्रणाली के अनुसार करना पड़ा। पुरानी कविता में 'प्रबंध' का रूप कथात्मक और वस्तु वर्णात्मक ही चला आता था। या तो पौराणिक कथाओं, ऐतिहासिक वृत्तों को लेकर छोटे-छोटे आख्यान काव्य रचे जाते थे, जैसे पद्मावत, रामचरितमानस, रामचंद्रिका, छत्रप्रकाश, सुदामाचरित, दानलीला, चीरहरन लीला इत्यादि-अथवा विवाह, मृगाया, झूला, हिंडोला, ऋतुविहार आदि को लेकर वस्तुवर्णात्मक प्रबंध। अनेक प्रकार के सामान्य विषयों पर कुछ दूर तक

चलती हुई विचारों और भावों की मिश्रित धारा के रूप में छोटे-छोटे प्रबंधों की चाल न थी।

काव्य रूप की दृष्टि से भारतेंदु ने मुक्तक काव्य रचना की जिनमें लोकछंदो (ठमरी, दादरा, मलार, इमन आदि) लोकसंगीत शैली (लावनी) दोहों, व्यंग्योक्तियों (उर्दू का स्यापा, बंदरसभा) समस्या पूर्ति, मुकरियों, आदि के द्वारा नये-नये प्रयोग भी किए।

संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल (पृ. 394-395)
- भारतेंदु समग्र (पृ. 102)
- भारतेंदु समग्र (पृ. 170)
- भारतेंदु समग्र (पृ. 269)
- कवि वचन सुधा हिंदी भाषा (निबंध)
- भारतेंदु समग्र (पृ. 1049)
- भारतेंदु समग्र (पृ. 1050)
- भारतेंदु समग्र (पृ. 1074-75)
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास μ डॉ. बच्चन सिंह राजकमल प्रकाशन (पृ. 137)